ओ३म्

आर्य वन्दना

मूल्य ९ रूपये

हिमाचल प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा का मुख पत्र

सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में ऋषिवर के विचार

मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य–असत्य अर्थ को प्रकाश करना है, अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उस को मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह असत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाये। किन्तु जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है, वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत होता है, इस लिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिए विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश व लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझ कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें।

मनुष्य का आत्मा सत्यासत को जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है, परन्तु इस ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रक्खी है और न किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि पर तात्पर्य है, किन्तु जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जान कर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें, क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।

वे आर्य ही थे जो अपने लिए कभी जीते न थे,
वे स्वार्थरत हो मोह की मदिरा कभी पीते न थे।
सारसार के उपकार हित जन्म लेते थे सभी,
निश्चेष्ट हो कर किस तरह बैठ सकते थे कभी।

—गुप्त जी

यह अंक आर्य वन्दना कोष के सहयोग से प्रकाशित किया गया तथा
आगामी अंक आर्य वन्दना कोष के सौजन्य से प्रकाशित किया जाएगा।

मानव दुःख क्यों पाता है ?

♦रामगोपाल सिंह, ग्राम पत्रालय–झाँगा, कुशीनगर (उ.प्र.)

मानव सृष्टि का सर्वोत्तम प्राणी है, परन्तु यह देखा जाता है कि मानव ही अन्य सभी प्राणियों की अपेक्षा दुःख को अधिक व्यक्त कर सकता है। मानव जितना बीमार पड़ता है, जितना मानसिक परेशानियों में उलझा हुआ है, उतना अन्य कोई भी प्राणी शारीरिक या मानसिक रूप से दुःखी नहीं है।

मेरे अपने अनुभव से पूरी सृष्टि का एक निश्चित नियम है। प्रत्येक जीवधारी के खान–पान एवं रहन–सहन का एक अटल नियम है और उसका चलाने वाला कोई चेतन सत्ता है। यदि ऐसा नहीं होता तो आज करोड़ों वर्षों से अपने सौर–मण्डल का केवल एक ही सूर्य है, एक ही चन्द्रमा है। क्यों नहीं दो चन्द्रमा या दो सूर्य हो जाते हैं। जब कोई भी जीवधारी उस प्राकृतिक नियम या ईश्वरीय व्यवस्था के विरुद्ध काम करता है तो वह दण्ड का भागी बनता है। मानव अन्य जीवधारियों की तुलना में प्राकृतिक नियमों का अधिक उल्लंघन करता है। प्रकृति ने मानव को मूल रूप में शाकाहारी बनाया है क्योंकि उसकी संरचना शाकाहारी जीवों से मिलती–जुलती है। चौबीस घण्टे में दो–बार भोजन करने का नियम है। इसी प्रकार यौन–सम्बन्ध स्थापित करने का भी कुछ निश्चित नियम है, परन्तु आधुनिक युग में इन नियमों को बेकार का प्रतिबन्ध कहकर टाल दिया जाता है। आजकल के वैज्ञानिक एवं शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकों में भी मानव को सर्वाहारी कहा गया है। कुल मिलाकर कहने का आशय यह है कि आज का मानव स्वच्छन्द रूप से जीवन जी रहा है। जिसका दुष्परिणाम वह भोग रहा है।

हमारे प्राचीन मनीषियों ने मानव को सुख पूर्वक जीने के लिए कुछ निश्चित नियम खोज निकाले हैं जैसे–''सोलह संस्कार'' इन संस्कारों के द्वारा हमें जन्म से मृत्यु तक जीने की कला का दिग्–दर्शन कराया जाता है। जैसे बालक के जन्म के बाद एक संस्कार है ''जातकर्म संस्कार'' इसमें अन्य अनेक क्रियाएँ करने के बाद बालक का पिता बालक के दक्षिण कर्ण में कहता है–''वेदोऽसीति'' अर्थात् तुम्हारा गुप्त नाम वेद है। अब आप इस वाक्य की व्याख्या कीजिए, तो यह बात स्पष्ट रूप से सामने आती है कि ''हे बालक! तुमको वैदिक रीति के अनुसार जीवन यापन करना चाहिए, तभी तुम सुखपूर्वक जी पाओगे।

आज के युग में पहले तो संस्कार होते ही नहीं, यदि होते भी हैं तो पौराणिक विधि से, जो संस्कारों के विकृत रूप का निरूपण करता है।

मानव दुःखी होने पर ईश्वर को दोषी ठहराता है, जबकि गायत्री मन्त्र में ईश्वर को प्राणों से भी प्रिय, सभी प्रकार के दुःखों को दूर करने वाला तथा सुखस्वरूप कहा गया है। अब आप यह बताएं कि जो परमात्मा इस प्रकार का है, वह किसी को जान–बूझकर दुःख क्यों देगा ?हम अपने दुःखों का कारण स्वयं हैं। हमने ही किसी प्राकृतिक या ईश्वरीय नियम को तोड़ा होगा, तो ईश्वरीय व्यवस्था के अनुसार दुःख के भागीदार बन रहे हैं। परमात्मा ने तो हमें सर्वश्रेष्ठ प्राणी बनाकर इस भूमण्डल पर सुख भोगने के लिए भेजा है।

मुख्य संरक्षक	: रोशन लाल बहल, आर्य प्रतिनिधि सभा, हि. प्र., मोबाइल : 94180–71247
परामर्शदाता	: 1. रत्न लाल वैद्य, आर्य समाज मण्डी, हि. प्र. मोबाइल : 94184–60332
	2. सत्यपाल भटनागर, प्राचार्य, आर्य आदर्श विद्यालय, कुल्लू मोबाइल : 94591–05378
विधि सलाहकार	: प्रबोध चन्द सूद (एडवोकेट), प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, हि. प्र. मोबाइल : 94180–20633
सम्पादक	: कृष्ण चन्द आर्य, महर्षि दयानन्द मार्ग, आर्य समाज, सुन्दरनगर (खरीहड़ी), जिला मण्डी (हि. प्र.) पिन 175019 मोबाइल : 94182–79900
मुख्य प्रबन्ध–सम्पादक	: विनोद स्वरूप, कांगड़ा कालौनी, डा. कनैड, तह. सुन्दरनगर, जिला मण्डी (हि. प्र.) पिन 175019 मोबाइल : 94181–54988
प्रबन्ध–सम्पादक	: माया राम, गांव चुरढ़, सुन्दरनगर मोबाइल : 94184–71530
सह–सम्पादक	: 1. राजेन्द्र सूद, 106, ठाकुर भ्राता, लोअर बाजार, शिमला
	2. मनसा राम चौहान, आर्य समाज, अखाड़ा बाजार, कुल्लू मोबाइल : 94599–92215
मुद्रक	: प्राईम प्रिंटिंग प्रैस, शहीद नरेश कुमार चौक, सुन्दर नगर, (हि. प्र.) 175019
नोट	: लेखकीय विचारों से सम्पादकीय व प्रकाशकीय सहमति आवश्यक नहीं है।

सम्पादक, मुद्रक एवं प्रकाशक कृष्ण चन्द आर्य ने हिमाचल आर्य प्रतिनिधि सभा के लिए छपवाकर आर्य समाज, महर्षि दयानन्द मार्ग, खरीहड़ी (सुन्दरनगर) से प्रकाशित किया।

सम्पादकीय

हम १९४७ से १९४८ में जब स्कूल जाया करते थे, तो सामूहिक प्रार्थना में हम गाते थे हमारे ध्यान में आओ आंखों में बस जाओ। अंधेरे दिल में आके परम ज्योति जगा देना। अर्थात् प्रभु से सादर प्रार्थना की गई कि प्रभु हमारे ध्यान में आकर आंखों में बस जाए। अंधेरे दिल में परम ज्योति जगा दें। प्रभु का आनंदमय हाथ जब हमारे सिर पर रहेगा तो कोई भी शक्ति हमें विचलित नहीं कर पाएगी व आनंद अनुभूति करेंगे। बिना सुख की अनुभूति किए परम सत का अनादर नहीं कर सकते। उपरोक्त प्रार्थना में कहा गया है बहा दो प्रेम की गंगा, दिलों में प्रेम का सागर हमें आपस में मिल–जुल रहना सीखा देना। इन शब्दों में प्रभु से कहा गया है कि हमारी आंखों में सभी के प्रति प्रेमभाव पैदा करे। हमारे दिल प्रेम सागर में डूबे हों। प्रभु से कहा गया है कि हे परमपिता हमें आपस में मिलजुल कर रहना सीखा देना ताकि हम जीवन भर सुकृतियों की खेती करके पके हुए खरबूजे की तरह इस शरीर का त्याग करके परमानंद प्राप्त करें। जैसे खरबूजा पककर स्वतः अपनी बेल से अलग हो जाता है। हमारी प्राण शक्ति को यह अनुभव हो कि उस सुगन्ध को जो हम ले रहे हैं वैसे ही पके हुए खरबूजे की तहर १०० साल तक जीवन जीने के बाद स्वतः ये शरीर सांस रूपी खरबूजे से अलग हो जाए। उस परम सत्ता के आगे नत्तमस्तक होकर हम कहें कि हमें जो मानव जीवन आपने दिया था। वह जीवन हमने सामर्थ्य व शक्ति के अनुसार सुकृत्य करके बिताया फिर भी कुछ मानव चोले को प्राप्त करके अनिष्ट हुआ हो उसे क्षमा कर देना अपना कृपापथ, आनंदमय हाथ हमारे सिर से उठा न देना। आपकी भक्ति हमारे जीवन की सबसे बड़ी शक्ति है उसमें हम आपके आशीर्वाद के बिना अग्रसर नहीं हो सकते हम प्रभु आपसे इस पृथ्वी पर दया व धर्म को बीज बोने की प्रार्थना करते हैं। क्योंकि दया ही धर्म का सबसे बड़ा मूल है। पाप का मूल आभिमान कहा गया है। गोस्वामी तुलसीदास ने ठीक कहा है :–

दया धर्म का मूल है पाप मूल अभिमाना
तुलसी दया न छोड़िए जब तक घट में प्राण।

अर्थात् दया सदा हमारे अंग संग बनी रहे जीवन के अंतिम सांस तक इससे हमारा नाता रहे। दया व धर्म की दृष्टि हमारे जीवन में सात्विक विचारों की दृष्टि करती है। जीवन का सर्वांगीण विकास होता है। अर्थात् जीवन में दया धर्म की खेती करके हमें अपने आपको सुंदर सुखद बनाना चाहिए। दूसरों के सुख–दुःख में बसन्त व पतझड़ में हम साथ देते रहें। तथा दीन दुःखियों दलितों पीड़ितों के दुखों को दूर करते रहें। प्रत्येक पीड़ित के आंसू को धोते रहें। वही जीवन का सबसे बड़ा कर्म धर्म मर्म है। इसे हम न भूलें। आर्य समाज के संस्थापक व वेदों के विद्वान् दयानन्द सरस्वती ने अपने शरीर त्याग के पूर्व अपना सब कुछ परोपकारिणी सभा को दे दिया। आज दिन तक परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द के सपनों को साकार करने के लिए दिन रात कार्यरत है। हमें मन व मस्तिष्क से चित लगाकर प्रत्येक कार्य पूर्ण करना चाहिए। उसमें सफलता हमारा स्वागत करेगीं अंत में कवि के :–

करना है जो काम उसी में चित लगा दो
आत्मा पर विश्वास करो संदेह भगा दो
पूर्ण तुम्हारा मनोरथ अभी न होगा, होगा तो बस अभी
नहीं तो फिर कभी न होगा।

मरने के बाद आदमी को जला दिया जाता है, नदी और बची हुई कुछ मुटठीभर राख को बहा दिया जाता है। इसलिए प्रभु ने मनुष्य को कर्मों की खेती करने की प्रेरणा दी है और सुकर्म करते हुए और कुकर्मों से दूर रहकर अपने जीवन को सुखी बनाने की बात कही है।

अभी १० जनवरी की ही बात है, जब हम बोट का प्रयोग करने बनायक ग्राम जा रहे थे। वहाँ सैंकड़ों लोग उस छोटे से ग्राम की ३० वर्षीय युवती और उसके साथ ६ साल के बेटे के निधन पर अंतिम श्रद्धांजलि देने शमशान भूमि में जा रहे थे। माँ बेटे की हादसे में दुःखद मृत्यु ने सभी ग्राम वासियों को दुःख सागर में डूबो दिया था। मृत्यु जीवन का सरल सत्य है। इसलिए शास्त्रकारों ने ठीक ही कहा है कि जो आयेगा सो जायेगा, राजा, रंक या फकीर। तुलसीदास ने ठीक ही कहा है कि ईश्वर का भजन करने में समय मत खोजो, सभी समय ठीक समय है। और उस समय कोई लाभ नहीं, जब हम दूसरों की निंदा करते है। इसलिए हमें सदा सुकर्मों की खेती करते रहना चाहिए और जीवन को सफल बनाना चाहिए।

आदमी जीवन के ताने–बाने और नाना प्रकार के चक्रव्यूह की रचना करता रहता है। जीवन भर हुंमायु की तरह लुढ़कता रहता है और लुढ़क कर ही संसार को छोड़ कर चला जाता है। पृथ्वी में आकर फिर इस जीवन को एक न एक दिन शरीर को छोड़ना पड़ता है। इसलिए हमारे ऋषि, मुनियों और दर्शनाकारों का यही कहना है कि संसार के लोगों जीवन को त्याग से भोगो और इसमें अपने आप को लिप्त मत करो। जब व्यक्ति संसार के सुखों को त्याग भाग से नहीं भोगता, तो वह जीवन भर पछताता रहता है। और अपने जीवन की घड़ियों को यू ही खर्च करता रहता है। इसलिए संत कवि कबीर ने ठीक ही कहा है।

कल करत सो आज कर, आज करत सो अब,
पल में प्रलय होयेगी, फिर करेगा कब।

पता नहीं कब और किन परिस्थितियों में हमें शरीर छोड़ना

पड़े और हम हाथ मलते हुए रह जायेंगे इसमें यही कहा जा सकता है। अब पछताये क्या होत है जब चिड़िया चुग गई खेत।

हमारे शास्त्रकारों का कहना है कि प्रेम द्वारा ही उस प्रेम और करूणामयी मूर्ति और परम पिता परमात्मा से नाता जोड़ा जा सकता है। प्रभु अनुभूति का विषय है। जब हम उसे यत्र, तत्र और सर्वत्र व्याप्त समझते हैं तो हमें आंसू बहाने की कोई आवश्यकता नहीं रहती, उस परमपिता को हमें सुधारने नही रहती उस परमपिता को हमें सुधारने की चिंता रहती है।

जब कभी भी हम इस संसार को छोड़े तो हंसते–हंसते संसार को त्यागें और संसार हमारी कमी को अनुभव करे। जीवन वही सार्थक हैं जो परोपकार, नेकी के काम आये। जो हाथ दूसरों को आंसूओं को पोछतें है वही हमारे सबसे बड़े साथी है। जो नर हमारे साथ परोपकार के कार्यों में लगे रहे और उस परमेश्वर का हाथ हमारे ऊपर बना रहे ताकि हम सदा ही परोपकार के कार्य करते हैं। जीवन को सार्थक बनाने का सबसे बड़ा तरीका है कि उसे भली प्रकार से जिया जाए और परोपकार की खेती करते–करते, हम जीवन को सफल और धन्य बनाये यही इस जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है इससे हम सदा और सर्वदा गर्व करते रहें।

बदल रहा है, त्यौहारों का स्वरूप

♦सत्यपाल भटनागर, अखाड़ा बाजार, कुल्लू (हि० प्र०)

परिवर्तन के इस दौर में पर्व और त्यौहार भी इससे अछूते नहीं रहे। त्यौहारों और पर्वों का समाज में अपना महत्व है। ये संस्कृति को संजीव बनाये रखते हैं तथा समाज में नव चेतना का संचार करते हैं। ये समाज के लिये इतने महत्वशाली होते हुए भी, हम इन की पृष्ठभूमि जानने का प्रयास नहीं करते और एक परम्परा समझकर इन्हें मनाते चले आ रहे हैं। परन्तु इनके मनाने के ढंग में भी परिवर्तन धीरे–धीरे आ रहा है। इस परिवर्तन के कई कारण हो सकते हैं जैसे आर्थिक सम्पन्नता, अधुनिकता, नवीन वस्तुओं की उपलब्धता सुविधा आदि। पुरानी परम्परा में समाप्त हो रही हैं और उनका नया स्वरूप उभर कर सामने आ रहा है। इस बारे चर्चा नीचे दी जा रही है :–

दीपावली : दीपावली का त्यौहार, वर्षा ऋतु के पश्चात कार्तिक अमावस्था को मनाया जाता है। इस रात्रि को तेल के दीपकों से ही प्रकाश किया जाता था। तेल के दीपकों की रोशनी सौम्य होती है, आंखों को चुभाती नहीं। वर्षा ऋतु की सीलन के कारण कई कीट पतंगे उत्पन्न हो जाते हैं। गहन अंधकार में वे प्रकाश से आकर्षित हो, दीपक की लौ से टकरा कर जल जाते थे। परन्तु अब दीपकों का स्थान बिजली ने ले लिया। दीपक जलाने की परम्परा धीरे–धीरे समाप्त होती जा रही है। तेल का दीपक जलाये रखने में परिश्रम करना पड़ता था। कभी तेल समाप्त हो जाता था तो कभी हवा का झौंका उसे बुझा देता। कभी बाती छोटी हो जाती। परन्तु बिजली एक बार जल जाये, फिर कोई झंझट नहीं। दीपक से वह चका चौंध नहीं हो सकती जो बिजली से होती है। घरों की बात छोड़िये मंदिरों में तो इस सज्जवाट की होड़ लग जाती है।

घरों की साफ–सफाई के पश्चात् द्वारा सज्जा के लिये फूल मालायें लटकाई जाती हैं। गांव में भीति चित्र बनाये जाते थे। अब कृत्रिम फूल मालायें घुस पैठकर चुकी हैं। साथ 'शुभ दीपावली' के बने बनाये पोस्टर मिल जाते हैं दोनों अधिक आकर्षक तथा कई वर्ष चलते हैं। ये सस्ते हैं तथा मुरझाते भी नहीं। बस हर वर्ष प्रयोग से पहले इन्हें सर्फ के घोल से निकाल लिये। ये उतने ही सुन्दर बने रहते हैं जितने कभी मोल लेते समय थे। त्यौहारों में आंगन में अल्पण बनाने की प्रथा है। अल्पणा बनाना एक कला है जो पीढ़ी दर पीढ़ी मातायें। बेटियों को सिखाती आई हैं। ये चतुर्भुज, षटभुज गोलाकार, अष्टभुज आकृतियाँ होती हैं। परन्तु अब बने बनाये कागज के उल्पणा मिल जाते हैं जिनके पीछे गोंद लगी होती है। बस बाजार से लाईये और उपयुक्त स्थान पर चिपका दीजिये। स्थान धोने, लिपाई तथा अल्पणा बनाने का झंझट समाप्त। यही प्रक्रिया रंगोली के लिये भी अपनाई जाती है।

दीपावली पर मिठाई के उपहारों का अदान प्रदान होता था। मिठाई मेहंगी हो गई है परन्तु फिर भी शुद्धता का पता नहीं। इससे बचने के लिये अब विस्कुट के पैकेट, मुरब्बा का पैक, चाकलेट सूखे मेले या अन्य गिफ्ट पैक का चलन आरम्भ हो गया है। दीपावली पर अब खूब प्रदूषण होता है। भिन्न–भिन्न प्रकार के पटाखों से बाज़ार अटा पड़ा रहता है। ध्वनि प्रदूषण, वायु प्रदूषण के साथ–साथ कूड़े से गलियां और बाजार भर जाते हैं। जिस पर विचार किया जाना चाहिये।

मकर संक्रांति : यह पर्व ऋतु चक्र और पर्यावरण से जुड़ा है। सूर्य मकर राशि में प्रवेश करता है और उतरायण आरम्भ होता है। दिन बड़े और रातें छोटी होने लगती हैं। पौराणिक संगम या तीर्थ स्नान करते हैं। परन्तु नई पीढ़ी ऐसे खुले स्थान पर स्नान से परहेज़ करती है। घाटों और नदी संगम पर अब पहले सी भीड़ नहीं होती। नई पीढ़ी के युवा फब्बारे के नीचे, बाथ रूम में नहाना अधिक पसंद करते हैं। गंदले पानी में डुबकी लगाकर नहाने में उन्हें चमड़ी के रोगों का डर बना रहता है।

इस पर्व पर दान दक्षिणा मांगने वाले काफी लोग आते हैं परन्तु अब कविता रूप में आशीर्वाद के बोल सुनने को नहीं मिलते। अब तो शार्ट कट अपनाया जाता है। सीधे काम की बात, संक्रांति दान दक्षिणा कह जो मिला, सो मिला और आगे बढ़ गये। फास्ट फूड और रेडीमेड के जमाने में धीरे–धीरे समाज में परिवर्तन आ रहा है। परन्तु देहात में बड़े–बूढ़ों का आशीर्वाद अब भी लिया है। यह बात अलग है कि अब हाथ घुटने तक ही जाते हैं, पांव तक नहीं।

होली : होली सौहार्द और प्यार का त्योहार है। पहले सब घरों से निकलते थे। एक दूसरे पर रंग उंडेलते गले–मिलते, गाते बजाते टोलियों में चलते थे। इस अवसर पर गाये जाने वाले गाने विशेष होते थे। परन्तु अब लोग घरों से कम ही निकलते हैं। वे या तो सीरियल दूरदर्शन पर देखते रहते हैं या घर पर ही होली खेलना पसंद करते हैं। क्योंकि बाहर गाना बजाना कम और हुड़दंग अधिक होता है। गाने तो अब भी गाये जाते हैं परन्तु वे परम्परागत न होकर फिल्मी अधिक होते हैं। पिचकारी का प्रयोग कम हो गया है। गुलाल से होली अधिक खेली जाती है। अब घर में गुलाल कोई नहीं बनाता, बाजार से बना बनाया प्रयोग में लाते है। नौजवान इस बात का विशेष ध्यान रखते हैं कि कोई उन्हें ऐसा रंग न लगा जाये जिससे उनके चेहरे की आभा बिगड़ जाये। तेज़ाबी रंग चमड़ी के लिये हानिकारक होते हैं। पहले हर छोटे बड़े गांव, शहर, कस्बे में रात को झांकियां निकाली जाती थीं। परन्तु दूरदर्शन ने इनका आकर्षण समाप्त कर दिया है। नई पीढ़ी की इसमें कोई रूचि नहीं। हाँ–जहाँ झांकियों के लिये सरकारी अनुदान मिलता है, यह कार्य उन्हीं स्थानों तक सीमित होकर रह गया है।

लोहड़ी : यह मूलतः पंजाब में मनाया जाने वाला त्यौहार है। जहाँ पंजाबी परिवार रहते हैं, वे इस त्यौहार को अवश्य मनाते हैं। यह अग्नि देव के प्रति कृतज्ञता का त्यौहार है। कठोर सर्द ऋतु अग्नि देवता के सहारे बिताते हैं। यह त्यौहार सर्द ऋतु की समाप्ती पर ही प्रायः आता है। अलाव जलाकर विधिपूर्वक इसका पूजन कर अग्नि देव को विदा करते हैं। परन्तु अब लकड़ियाँ आसानी से उपलब्ध नहीं होतीं। बड़े अलाव अब कम ही जलाये जाते हैं। इस अवसर पर वह परिवार अलाव जलाकर लोहड़ी पूजन अवश्य करता जिसके घर में कोई प्रसन्नता की बात हुई हो। स्त्रियों का गीत संगीत का कार्यक्रम बड़ी रात तक चलता है। पहले परम्परा गीत, बधाई के गीत इत्यादि गाये जाते थे। अब इनका विलोपन होता जा रहा है। नई पीढ़ी को इन में कोई रूचि नहीं। फिल्मीं धुने, गीत यहाँ भी चलते हैं और उस पर थिरकते भी हैं। परन्तु इस अवसर पर मांगने वालों की कोई कमी नहीं होती। सुन्दर–मुन्दरी और दुल्लाभठ्ठी की कहानी के स्वर अब भी गूंजते हैं। दुल्ला भठ्ठी वाले ने निर्धन सुन्दरी नाम की कन्या को अपनी बेटी बनाकर, उसका उपयुक्त वर से विवाह रचाकर विदा किया था। इस तरह उसने उस कन्या की लाज बचाई और अमर हो गया।

रक्षा–बंधन : यह त्यौहार श्रावण पूर्णिमा को मनाया जाता है। कहते हैं इस पर्व का आरम्भ वैदिक काल में हुआ था। इस दिन यज्ञोपवीत लिये और दिये जाते थे। जब समाज टूटने लगा था समाज में एकता की आवश्यकता पड़ी ब्राह्मण हर व्यक्ति को रक्षा सूत्र बांधने लगे। यह लाल–पीले रंग का कच्चा सूत का बना होता था। जो इस बात का द्योतक था कि सामाजिक रिश्ते कच्चे धागे की तरह होते हैं। यदि इन्हें ठीक ढंग से नहीं निभाया तो टूट जाते हैं। परन्तु बाद में लड़कियां अपनी रक्षा के लिये यवन काल में गांव, गली या पड़ोस के लड़कों को रक्षा सूत्र बांधने लगीं और यह अब भाई–बहिन का पावन त्यौहार ही माना जाता है। चाहे यह एक दिन का त्यौहार है, परन्तु इसमें टूटते रिश्तों को जोड़े रखने की असीम क्षमता है। यह भाई–बहिन के रिश्तों को गरिमा देने वाला त्यौहार है। बहिने भाई की दीर्घ आयु तथा कुशलता की कामना करती हैं और भाई अपनी बहिन के प्रति अपने कर्तव्य निभाने के लिये सजग होता है। पंजाबी में रक्षा सूत्र को राखी कहते है। जिसका अर्थ है रक्षा करना। भाई का यह कर्तव्य बनता है कि बहन की रक्षा करे। समय के साथ रक्षा सूत्रों के स्वरूप में भी परिवर्तन आया है। राखी अब कई आकर्षक रूपों में मिलती है। यह अब एक सूत्र न होकर विभिन्न आकार की होती हैं। छोटे बच्चों के लिये कई रंगों और डिजाईनों में मिलती है। मेहंगी और सस्ती राखियां बाजार में उपलब्ध होती हैं। कृत्रिम सामान से सज्जावटी राखियां कितनी प्रेरणा देती हैं। इस बारे राये भिन्न हो सकती है। सौंदर्य प्रधान राखियां फैशन के साथ बदलती है। तथा हर वर्ष नया रूप ले उपस्थित होती हैं।

बदलते समय के साथ पर्वों और उत्सवों में परिवर्तन स्वनाविक है। हम इन होने वाले परिवर्तनों को रोक नहीं सकते परन्तु इतनी सावधानी अवश्य रखनी चाहिये कि इनका मूल उद्देश्य न बदले। इस के साथ हमें इन त्यौहारों के मनाने का कारण जानना चाहिये और अगली पीढ़ी को भी इन त्यौहारों में भाग लेने के लिय सक्रिय करना चाहिये। त्यौहार मौज मस्ती के अवसर नहीं। ये अपनी संस्कृति को संजीव बनाये रखते हैं। समाज में नव चेतना लाते हैं। हमें अपने उत्सव तथा पर्व उत्साह से मनाने चाहिये।

'अन्धविश्वास'-एक नासूर

♦विनोद स्वरूप, मुख्य प्रबन्ध सम्पादक

अन्धविश्वास की धुंध हमारे समाज में शताब्दियों से छाई हुई है किन्तु आजकल टी.वी.चैनलों में अंधविश्वासों की बाढ़ सी आ गई है। आज यह धन्धा बन चुका है, पैसे बटोरने और लोगों को उलझाने का एक साधन बन चुका है। अनेक साधु, बाबा, धर्मगुरू, तांत्रिक, ज्योतिषी, पुजारी और तिलकधारी ठगों ने इसे अपना धन्धा बना लिया है। ये लोग पैसे के बलबूते पर चैनलों से समय खरीद कर लोगों की 'अगली दुनियाँ' सजाने–संवारने का धंधा कर रहे हैं। वे अपना जीवन संवार कर प्रत्येक प्रकार की सुख सुविधाओं का केवल आनन्द ही नहीं उठा रहे अपितु करोड़ों रूपए की सम्पति के स्वामी बन बैठे हैं। धागा–डोरी, ताबीज, हनुमान रक्षा महामन्त्र, दुर्गा कवच, चण्डी रक्षा मन्त्र के कवच डाक द्वारा भेजकर प्रतिदिन लाखों का कारोबार करते हैं। भोले–भाले, मुसीबतों में फंसे अनेक लोग इनके झांसे में फंस जाते हैं और अपने खून पसीने की गाढ़ी कमाई को लुटा रहे हैं। अनेक पढ़े लिखे और राजनीतिज्ञ भी इनसे महंगे आशीर्वाद लेने जाते हैं। एक बाबा जी जो तीसरी आंख से देखने का दावा भी करते हैं। उनके अनुसार बर्फी, रसगुल्ले, समोसे, चाट, लड्डू खाने से भी दिव्य शक्तियाँ रूक जाती हैं का भ्रम फैला कर मधुमेह और रक्त चाप के मरीजों की जान के दुश्मन बने हैं। हरी मिर्च और नींबू की माला घर के द्वार पर लटकाना, घोड़े की नाल को दरवाजे पर कील से गाड़ना, उल्लू की टांग, आंख, कान के ताबीज तैयार कर घर के कोने में दवाने जैसे पाखण्ड करके तांत्रिक अंधविश्वास को बढ़ावा दे रहे हैं। पाखण्डी बाबाओं, तांत्रिकों और काला जादू के विशेषज्ञों के पास जाकर अपना उज्ज्वल भविष्य तलाशने का प्रयास करने वाले अंधविश्वासियों का एक ऐसा वर्ग तैयार हो गया है जो समाज में अंधकार को बढ़ाने में लगा हुआ है। देश की जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है जिस कारण बेरोज़गारी भी विकराल रूप धारण कर रही है। पढ़े लिखे प्रशिक्षित युवक जो बेरोज़गारी का शिकार हैं इन पाखण्डी बाबाओं के पास अपने भविष्य को संवारने के लिए इनके चक्कर काटते हैं। अनेक प्रकार की घरेलू, सामाजिक या व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान ढूंढ़ते लोग इन पाखंड की दुकान चलाने वालों को अपना भगवान मान लेते हैं और नित्य प्रति उनकी शरण में दिखाई देते हैं। ढोंगी बाबा अपने अनुयायियों की अंध श्रद्धा का अनुचित लाभ उठाकर मोटी कमाई करते हैं और रईसों का सा जीवन जीते हैं जबकि अपने सेवकों को संयम और सादा जीवन जीने का पाठ पढ़ाते हैं।

अनेक बुद्धिजीवी कहलाने वाले लोग भी इनके जाल में फंसते जा रहे हैं। अंधविश्वास हमारे समाज के लिए बहुत बड़ा नासूर है। अनेक बार ऐसी घटनाएं सामने आती हैं जिनमें जादू टोना करने वालों के चंगुल में फंस कर लोगों को अपनी समस्याओं से मुक्ति के स्थान पर संकट में फंसना पड़ा। स्वतन्त्रता के ६८ वर्ष बाद भी लोग अंधविश्वास और जादू–टोने के महाजाल से निकल नहीं पाए। अंधविश्वास का यह रोग इतना भंयकर है कि इससे समाज शताब्दियों पीछे चला जाता है। आजकल टी.वी. चैनलों पर बच्चों के लिए जो कुछ परोसा जा रहा है वह अधिक भयवह और विनाशकारी है। अंधविश्वास का प्रचार–प्रसार हमें इतना विवेकहीन बना रहा है कि समाज में उच्च स्तर के डॉक्टर, इंजीनियर, अध्यापक, वैज्ञानिक, वैचारिक और लेखक पैदा करने की क्षमता नहीं रह गई है। देश को पतन के गर्त में गिरने से आर्य समाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती की शिक्षाओं का विशेष योगदान है। तत्कालीन समाज में महर्षि ने अंधविश्वास का समूल नाश करने के लिए स्थान–स्थान पर पाखण्ड खण्डनी पताका फहराई और अपने प्रवचनों और शिक्षाओं का प्रचार–प्रसार किया। पाखंडियों ने स्वामी जी का स्थान–स्थान पर इसके लिए कड़ा विरोध किया क्योंकि कि उनकी रोजी रोटी पर सीधा प्रहार हो रहा था। बाबाओं और तांत्रिकों का धंधा चौपट हो रहा था। धर्म के ठेकेदारों के कारण महर्षि को उस समय अनेक कष्टों का सामना भी करना पड़ा किन्तु वे हार मानने वाले नहीं थे। आज आवश्यकता है महर्षि की शिक्षाओं को बढ़ावा देने और जोरशोर से अंधविश्वास के विरूद्ध आवाज़ उठाने की ताकि भटके हुए लोगों को सही दिशा मिल सके। यद्यपि जादू–टोने को अपराध की श्रेणी में रखा गया है तथापि इसका क्रम जारी है। स्पष्ट है कि लोगों को कष्टों से मुक्ति दिलाने के नाम पर न सिर्फ उनसे ठगी की जा रही है अपितु महिलाओं से बलात्कार और नरबलि तक दी जा रही है। इस दुष्चक्र को रोकने के लिए अंधविश्वास के विरूद्ध सार्वजनिक अभियान चलाने की आवश्यकता है। प्रत्येक आर्य समाज में कम–से–कम साप्ताहिक संगोष्ठियों का आयोजन किया जाय। पाखंड, तन्त्र–मन्त्र और जादू टोने का खण्डन करने वाला साहित्य वितरित किया जाय। स्कूल कॉलेजों में बच्चों को जागरूक करने के लिए संवाद प्रतियोगिता, भाषाण–प्रतियोगिता और लघु नाटिकाओं का मंचन करके अंधविश्वास से छुटकारा पाने का प्रयत्न किया जा सकता है ताकि देश का भविष्य हमारा विद्यार्थी वर्ग समय रहते जागरूक हो जाय और इस महारोग का शिकार न हो। सरकार की ओर से इन अंध अपराधों में संलिप्त लोगों को कठोरतम दण्ड का प्रावधान हो।

परमेश्वर ही सच्चा गणेश है

♦इन्द्रजित्देव, चूना भट्टियां, सिटी सैंटर के नजदीक, यमुनानगर (हरियाणा)

"आर्य वन्दना" के जनवरी अंक में गणेश की महिमा विषयक एक लेख प्रकाशित हुआ है जो पूरी तरह से पौराणिकता से भरपूर है। लेखक महादेय के अनुसार गणेश की पूजा यह धारणा कार्य करती है कि इससे सभी सुख, सौभाग्य तथा समृद्धि की प्राप्ति होती है तथा जीवन में सभी बाधाओं एवं विघ्नों से मुक्ति मिलती है। लेखक ने यह भी लिखा है कि पार्वती ने अपने शरीर पर इतना उबटन लगा रखा था कि जिससे एक मनुष्य का पुतला बन सके। पार्वती ने फिर प्राण फूंके और उसे अपना पुत्र बनाया। यह भी लेख में लिखा है कि शिव ने कहा जो संसार का चक्कर लगाकर प्रथम आएगा, वही प्रथम पूजनीय होगा तथा सभी देवता तेजी से दौड़े परन्तु गणेश नामक शिव का पुत्र न दौड़ सका क्योंकि उसका शरीर भारी थी। गणेश ने अपने माता–पिता का ही चक्कर लगाया एवं उन्हें प्रणाम करके बैठ गये, अतः गणेश प्रथम पूज्य बन गया इत्यादि।

पूरा लेख अवैज्ञानिक, तर्कहीन व प्रमाणहीन है। लेखक महोदय इसे "कल्याण" या किसी अन्य पौराणिक पत्रिका में छपा लेते तो उनकी उपरोक्त बातों का कोई विरोध न करता, परन्तु एक वैदिक पत्रिका में यह प्रकाशित हुआ है, अतः इसे पढ़कर हमें आश्चर्य व दुःख हुआ है। इसके उत्तर में कुछ बातों को तर्क व विज्ञान के आधार पर लिखना वांछनीय है, ताकि समाजियों को तो सत्य का ज्ञान हो सके तथा वे भ्रम में न रहें।

हमारे कुछ प्रश्न लेखक से हैं :–यदि स्त्री के शरीर पर उबटन लगा लेने से पुत्र का शरीर बन सकता है तो ईश्वर ने पुरूष को क्यों उत्पन्न किया ? पार्वती हो या कोई अन्य स्त्री, उसके शरीर में गर्भाशय की स्थापना ही क्यों की ? वेदानुसार विवाह का मुख्य उद्देश्य उत्तम संतान उत्पन्न करना है। यदि पार्वती बिना पति के पुत्र को उत्पन्न करने की कला जानती थी तो उसने शिव से विवाह ही क्यों किया ? क्या शिव में कोई कमी थी। उबटन से पुत्र प्राप्ति की विद्या का उल्लेख किस वेद या किस आयुर्वैदिक अथवा एलोपैथिक ग्रन्थ में है ? उबटन लगाकर सोने से व्यक्ति के शरीर से वह झड़ या उतर जाना चाहिये परन्तु पार्वती ने उतरने नहीं दिया, तभी तो उबटन से पुत्र बना लिया व फूंक मारकर उसे चेतन गणेश बना दिया। लेखक को चाहिए कि इस ईलाज का बांझ स्त्रियों में प्रचार करें ताकि वे भी अपने शरीर पर उबटन लगा लिया करें व जब चाहें, वे अपने उबटन से पुत्र का पुतला बनाकर व उस पुतले में प्राण फूंक कर संतानवती बन जाया करें। वे पति तथा वैद्य–डॉक्टर की सहायता लेने की आवश्यकता से मुक्त हो जाया करेंगी। प्राण फूंकने से पुत्र में आत्मा आती है तो मृत पुत्र की किसी भी माता का आज तक पुत्र–वियोग का दुःख क्यों भोगना पड़ता रहा है ? पुत्र की मृत्यु होने पर पुत्र का शरीर तो घर में पड़ा होता है। पार्वती की तरह पुत्र की माता उस मृत देह में फूंक मार कर पुत्र को जीवित कर लिया करें। यह फार्मूला बताने के लिए हम लेखक के बहुत धन्यवादी रहेंगे।

पार्वती ने अपने उबटन से उत्पन्न किए गणेश को घर के बाहर बैठा दिया, ताकि वे निश्चिंत होकर स्नान कर सकें व कोई भी व्यक्ति भीतर प्रवेश न कर सके, परन्तु शिवजी स्वयं को न रोक सके व पुत्र गणेश व पिता शिव के मध्य युद्ध छिड़ गया। परिणामतः पुत्र का सिर काटकर शिव जी भीतर प्रवेश कर गए। पार्वती ने हाहाकार मचाया तो शिव ने एक हथिनी का सिर जोड़कर पुत्र को पुनः जीवित कर दिया। हमारी इच्छा विद्वान लेखक से यह जानने की है जिस शिवजी को पौराणिक व लेखक स्वयं ईश्वर मानते हैं, उसके घर में इतनी अधिक गरीबी क्यों थी कि वह अपने घर में दरवाजा बन्द करके स्नान करने योग्य एक बाथरूम भी नहीं बनवा सका ? जब इतनी निर्धनता थी तो वह ईश्वर कैसे कहला सकता है, क्योंकि ईश्वर का अर्थ ऐश्वर्यशाली होता है। लेखक को यह भी बताना होगा कि जब शिवजी की पत्नी घर के भीतर स्नान कर रही थी तथा उनके पुत्र गणेश ने उन्हें भीतर जाने से रोका तो वे रुके क्यों नहीं ? भीतर जाने का उनका उतावलापन उनके संयम की पोल खोलता है। इतना उतावलापन उनके था कि भीतर जाने से रोकने वाले अपने पुत्र का सिर भी काटना उन्हें अधर्म प्रतीत नहीं हुआ। किसी का सिर जब कटेगा तो उसके शरीर से उसके प्राण व उसकी आत्मा निकल जाएगी, यह एक दृढ़ वैज्ञानिक नियम है। तत्पश्चात् कोई भी पिता, माता, राजा, वैज्ञानिक या गुरु तो क्या, स्वयं ईश्वर भी पुनः प्राण तथा आत्मा को उसी शरीर में प्रवेश नहीं करा सकता।

लेखक के अनुसार जब पार्वती ने अपने पति के समक्ष पुत्र वियोग का दुखड़ा रोया, शिव ने एक हथिनी का सिर सिरहीन पुत्र के सिर पर फिट करके जीवित कर दिया। हमारा प्रश्न उपरोक्त लेख के लेखक से यह है किस कम्पनी के फैवीकोल या कीलों से गणेश का सिर पुनः फिट किया ? आज परस्पर लड़ाई के अनेक मामलों में एक दूसरे के सिर काटे जा रहे हैं। लेखक की मान्यता वाले जिस भी किसी ग्रन्थ में सिरहीन धड़ से किसी अन्य प्राणी का सिर जोड़ने की सफल विधि का उल्लेख है, उस ग्रन्थ की पृष्ठ संख्या सहित

नाम व लेखक का नाम बताने की कृपा करें ताकि आज जहाँ कहीं परस्पर लड़ाई में सिर कटते हैं, मैं वहाँ सिर जोड़ने में कुछ सहायता कर सकूँ।

हमारा अगला प्रश्न यह है कि शिव जी में हथिनी का सिर अपने मृत पुत्र के धड़ से जोड़कर पुनर्जीवित करने की योग्यता व क्षमता थी तो उन्होंने अपने पुत्र का पहला सिर ही क्यों नहीं जोड़ दिया ? हथिनी की मृत्यु करके अपने पुत्र को पुनर्जीवित करना कथित ईश्वर शिव की शोभा बढ़ाने वाला कार्य है क्या ? कोई भी मनुष्य जिसका धड़ तो मनुष्य का हो परन्तु सिर हथिनी का हो, क्या सूखपूर्वक सो सकेगा ?

उपरोक्त लेख के अनुसार एक बार देवों में यह विवाद हो गया कि उन सबमें किस देवता की पूजा सर्वप्रथम होनी चाहिए ? शिव ने उन्हें संसार का चक्कर लगाकर आने को कहा। जो दौड़ में सबसे पहले लौटेगा, वही देवता प्रथम पूज्य होगा। गणेश का शरीर भारी था। वह न दौड़ सका। उसने माता–पिता का चक्कर लगाया और प्रणाम करके बैठ गया। अतः प्रथम पूज्य माने गए। हमारा निवेदन यह है कि प्रथम पूज्य देव का निर्णय करने का लाईसैंस (=अधिकार) शिवजी को किसने दिया ? उसका निर्णय मान्य क्यों होना चाहिए ? वे देव क्यों कर माने जा सकते हैं, जब परस्पर उनमें होड़ मची हुई थी कि मेरा पूजन सर्वप्रथम होना चाहिए ? लोकैषणा रहित व्यक्ति देवता होता है जबकि लोकैषणायुक्त (=प्रशंसा प्राप्त करने की इच्छा करने वाला) व्यक्ति मनुष्य कहलाता है, देवता तो कदापि मान्य हो ही नहीं सकता। यहाँ हम आचार्य यास्क द्वारा निरुक्त ७/११ में वर्णित देवों का वर्णन करना उचित समझते हैं–देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थाने भवतीति वा। इसके अनुसार निम्नलिखित कुछ मूर्तिमान व कुछ अमूर्तिमान देव यह होते हैं :–

१. दान देने वाले = मनुष्य, विद्वान् व परमेश्वर।
२. दीपन, प्रकाश करने वाले = सूर्यादि लोक, सब मूर्तिमान द्रव्यों का प्रकाश करने वाले।
३. द्योतन करने वाले = सत्योपदेश करने से भी देव अर्थात् माता, पिता, आचार्य व अतिथि तथा पालन, विद्या व सत्योपदेशादि करने वाले।
४. द्युस्थान वाले देव = सूर्य की किरण, प्राण तथा सूर्यादि लोको का भी जो प्रकाश करने हारा है, वह परमेश्वर देवों का भी देव है।
५. अन्य देव = इन्द्रियाँ, मन। ये शब्दादि विषयों तथा सत्यासत्य का प्रकाश करते हैं। वेद मन्त्र भी देव हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती "सत्यार्थप्रकाश" के सप्तम समुल्लास में इस विषय में लिखते हैं–"देवता दिव्य गुणों से युक्त होने के कारण कहते हैं, जैसी कि पृथ्वी। जो त्रयस्त्रिंशनिशता" इत्यादि वेदों में प्रमाण हैं, इसकी व्याख्या 'शतपथ' में की है–तैंतीस देव अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्र सब सृष्टि के निवास स्थान होने से ये आठ वसु हैं। प्राण, अपान, व्यान, उदान, सामान, नाग, कूर्म्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और जीवात्मा, ये ग्यारह रुद्र इसलिए कहाते हैं कि जब शरीर को छोड़ते हैं, तब रोदन कराने वाले होते हैं। संवत्सर के बारह महीने बारह आदित्य इसलिए कहाते हैं कि ये सब की आयु को लेते जाते हैं। बिजली का नाम इन्द्र इस हेतु है कि वह परम ऐश्वर्य का हेतु है। यज्ञ को प्रजापति कहने का कारण यह है कि जिससे वायु, वृष्टि, जल, औषधी की शुद्धि, विद्वानों का सत्कार और नाना प्रकार की शिल्पविद्या से प्रजा का पालन होता है। ये तैंतीस पदार्थ पूर्वोक्त गुणों के योग से देव कहाते हैं।

लेखक सत्यपाल भटनागर जी से अनुरोध है कि उपरोक्त विवरण व व्याख्या को ध्यान से पढ़ने का कष्ट करें व पाठकों को स्पष्ट करें कि कौन–से देव थे जिनमें अपनी पूजा प्रथमतः कराने की थी ? वास्तविकता यह है कि उपरोक्त देवों से अतिरिक्त काल्पनिक देवों की धारणा लेखक के मस्तिष्क में है। उसे त्याग दें वे केवल उपरोक्त वास्तविक देवों की मान्यता स्थापित करें।

लेखक जी! पुत्र को अपने माता–पिता का आदर व यथोचित सेवा करनी ही चाहिए, यह निर्विवाद है, परन्तु गणेश की तरह माता–पिता की परिक्रमा कर लेना न तो किसी प्रकार की सेवा है तथा न इस कार्य में तनिक भी आदर करने का भाव है। गणेश के मन में भी अपनी पूजा सर्वप्रथम कराने की ही इच्छा थी जिसे शास्त्रीय भाषा में लोकैषणा कहते हैं। हम लेखक महोदय को स्मरण दिलाना चाहते हैं कि इतिहास में माता–पिता का आदर व उचित सेवा करने वाले कई सुपुत्रों के प्रमाण उपलब्ध हैं। श्रवण कुमार तथा मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र इत्यादि के कार्यों को ध्यान में रखकर सोचिए व पाठकों को बताइए कि माता–पिता के शरीरों की परिक्रमा करने वाले गणेश में सुपुत्र के गुण थे अथवा श्रवण कुमार में ? रामचन्द्र जी ने तो राजभवन के सुख–सुविधाओं का परित्याग करके १४ वर्षों तक वनों में रहकर अपने पिता की प्रतिष्ठा तथा सौतेली माँ की इच्छा की रक्षा की थी। गणेश के जीवन में सेवा की एक भी घटना जब उपलब्ध नहीं होती तो उसका पूजन सर्वप्रथम करने–कराने में औचित्य क्या है ? सर्वप्रथम पूजन करने–कराने की किसी व्यक्ति की यदि इच्छा है तो श्रवण कुमार अथवा रामचन्द्र जी की। वैसे आज न गणेश संसार में है, न ही श्रवण कुमार कहीं दिखते हैं तथा न ही रामचन्द्र जी कहीं मिलते हैं। उनकी पूजा कैसे करोगे–कराओगे ? केवल चित्रों, मूर्तियों या थाली में जल रही धूप अगरबत्ती को

मत्था टेकने का नाम पूजा करना नहीं है। पूजा का अर्थ महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने "आर्योद्देश्यरत्नमाला" में इस प्रकार लिखा है–"जो ज्ञानादि गुण वाले को यथायोग्य सत्कार करना है, उसको 'पूजा' कहते हैं।" आज जो कुछ हो रहा है, वह पूजा न होकर अपूजा है, क्योंकि महर्षि दयानन्द सरस्वती ने "आर्योद्देश्यरत्नमाला" में यह भी लिखा है– "जो ज्ञानादि रहित जड़ पदार्थ जो सत्कार के योग्य नहीं है। उसका जो सत्कार करना है, वह "अपूजा" है।" थोड़ी देर के लिए हम बहस के लिए मानते हैं कि गणेश ने अपने माता–पिता की परिक्रमा की थी, इसलिए सर्वप्रथम उसी की पूजा करनी चाहिए तो प्रश्न उत्पन्न होगा कि जिस गणेश ने वह कार्य किया था, वह ही आज कहाँ नहीं है। पत्थर की बनी मूर्ति या कागज में दिख रहा गणेश वास्तविक गणेश नहीं है। आप पत्थर या कागज की पूजा कराते हैं जो जड़ पदार्थ हैं, ज्ञानरहित, क्रिया रहित हैं। इनका सत्कार हो नहीं सकता, अतः इस कथित गणेश से जो कुछ करते हो, वह अपूजा है व इससे कुछ लाभ नहीं होता, हानि अवश्य होती है।

गणेश का पूजन करना है तो पहले गणेश शब्द का अर्थ समझना चाहिए। 'गण संख्याने' इस धातु से गण शब्द सिद्ध होता है। उसके आगे ईश शब्द लगाने से गणेश शब्द सिद्ध होता है। 'गणानां समूहानां जगतामीशः स गणेशः' अर्थ=सब गणों नाम संघातों का अर्थात् सब जगतों का ईश स्वामी होने से परमेश्वर का नाम गणेश है।

–सत्यार्थप्रकाश, प्रथम समुल्लास

परमेश्वर के अनेक गुणवाचक, कर्मवाचक, सम्बन्धवाचक नाम हैं। इनमें शिव, गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र तथा सरस्वती आदि नाम हैं। वेद क्योंकि सृष्टि के प्रथम दिन ईश्वर ने दिए थे, उस दिन इन नामों के शरीरधारी मनुष्य कोई न थे। सामाजिक व्यवहार के लिए मनुष्यों के नाम रखना आवश्यक होता है, अतः वेदों में प्रयुक्त शब्दों को अपने व अपनी संतान के नाम करण हेतु प्रयोग करना पड़ा था। आज भी ऐसा ही होता है। वेद में यदि गणेश व शिवादि की पूजा का आदेश है तो वह सदैव रहने वाले अशरीरी गणेश से ही अभिप्रेत है, न कि बाद में शरीरधारी हुए किसी गणेश नामक व्यक्ति से। परमेश्वर से बड़ा विघ्नहारी कौन होगा ? विस्तार से इस विषय को समझने हेतु "सत्यार्थप्रकाश" का प्रथम समुल्लास पढ़ना चाहिए। 'शिवपुराण' व अन्य सभी पुराणों को महर्षि दयानन्द जी ने 'सत्यार्थप्रकाश' के तृतीय समुल्लास "संस्कार विधि" के वेदारम्भ संस्कार तथा "ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका" के ग्रंथ प्रामान्याप्रमाण्य विषय के अन्तर्गत पठन–पाठन हेतु त्याज्य ग्रंथों में रखा है। फिर लेखक ने आर्य समाजी होते हुए ग्रहण क्यों किया है ?

ऋषि दयानन्द की विलक्षणता

♦डॉ. धर्मवीर

ऋषि दयानन्द के जीवन में कई विलक्षणताएँ हैं, जैसे :–

घर न बनाना : किसी भी मनुष्य के मन में स्थायित्व का भाव रहता है। सामान्य व्यक्ति भी चाहता है कि उसका कोई अपना स्थान हो, जही पर जाकर वह शान्ति और निश्चिंता का अनुभव कर सके। एक गृहस्थ की इच्छा रहती है कि उसका अपना घर हो, जिसे वह अपना कह सके, जिस पर उसका अधिकार हो, जहाँ पहुँचकर वह सुख और विश्रान्ति का अनुभव कर सके।

यदि मनुष्य साधु है तो भी उसे एक स्थायी आवास की आवश्यकता अनुभव होती है। उसका अपना कोई मठ, स्थान, मन्दिर, आश्रम हो। वह यदि किसी दूसरे के स्थान पर रहता है तो भी उसे अपने एक कमरे की, कुटिया की इच्छा रहती है, जिसमें वह अपनी इच्छा के अनुसार रह सके, अपने व्यक्तिगत कार्य कर सके, अपनी वस्तुओं को रख सके।

ऋषि दयानन्द इसके अपवाद हैं। घर से निकलने के बाद उन्होंने कभी घर बनाने की इच्छा नहीं की। उन्हें अनेक मठ–मन्दिरों के महन्तों ने अपने आश्रम देने, उनका महन्त बनाने की इच्छा व्यक्त की, परन्तु ऋषि ने उन सबको ठुकरा दिया। राजे–महाराजे, सेठ–साहूकारों ने उन्हें अपने यहाँ आश्रय देने का प्रस्ताव किया, परन्तु ऋषि ने उनको भी अस्वीकार कर दिया। ऐसा नहीं है कि ऋषि को इसकी आवश्यकता न रही हो। ऋषि ने वैदिक यन्त्रालय के लिये स्थान लिया, मशीनें खरीदीं, कर्मचारी रखे, परन्तु उसको अपने लिये बाधा ही समझा। पत्र लिखते हुए ऋषि ने लिखा–आज हम गृहस्थ हो गये, आज हम पतित हो गये। इसमें उनकी इस आवश्यकता के पीछे की विवशता प्रकाशित होती है।

एक ऋषि भक्त मास्टर सुन्दरलाल जी ने ऋषि को लिखा–आपकी लिखी–छपी पुस्तकें मेरे घर में रखी हैं, उन्हें कहाँ भेजना है ? तब ऋषि ने बड़ा मार्मिक उत्तर सुन्दरलाल को लिखा–मेरा कोई घर नहीं है, तुम्हारा घर ही मेरा घर है, मैं पुस्तकों को कहाँ ले जाऊँगा ? इस बात से उनकी निःस्पृहता की पराकाष्ठा का बोध होता है।

पशुओं के अधिकारों की रक्षा : बहुत लोग दया परोपकार का भाव रखते हैं, वे प्राणियों पर दया करते हैं, उनकी रक्षा भी करते हैं, परन्तु ऋषि पशुओं के अधिकारों की लड़ाई लड़ते हैं। पशुओं की रक्षा के लिए समाज के सभी वर्गों से आग्रह करते हैं, उनके विनाश से होने वाली हानि की चेतावनी देते हैं, ऋषिवर कहते हैं–गौ आदि पशुओं के नाश से राजा और प्रजा का भी नाश हो जाता है। ऋषि ने कहा है–हे धार्मिक

सज्जन लोगो! आप इन पशुओं की रक्षा तन, मन और धन से क्यों नहीं करते ? हाय! बड़े शोक की बात है कि जब हिंसक लोग गाय, बकरे आदि पशु और मोर आदि पक्षियों को मारने के लिये ले जाते हैं, तब वे अनाथ तुम हमको देखके राजा और प्रजा पर बड़े शोक प्रकाशित करते हैं–कि देखो! हमको बिना अपराध बुरे हाल से मारते हैं और हम रक्षा करने तथा मारनेवालों को भी दूध आदि अमृत पदार्थ देने के लिये उपस्थित रहना चाहते हैं और मारे जाना नहीं चाहते। देखो! हम लोगों का सर्वस्व परोपकार के लिये है और हम इसलिये पुकारते हैं कि हमको आप लोग बचावें। हम तुम्हारी भाषा में अपना दुःख नहीं समझा सकते और आप लोग हमारी भाषा नहीं जानते, नहीं तो क्या हममें से किसी को कोई मारता तो हम भी आप लोगों के सदृश अपने मारनेवालों को न्याय व्यवस्था से फांसी पर न चढ़वा देते ? हम इस समय अतीव कष्ट में हैं, क्योंकि कोई भी हमको बचाने में उद्यत नहीं होता।

ऋषि केवल धार्मिक आधार पर ही प्राणि–रक्षा की बात नहीं करते, वे उनके अधिकार की बात करते हैं। समाज को उनके हानि–लाभ का गणित भी समझाते हैं। एक गाय के मांस से एक बार में कितने व्यक्तियों की तृप्ति होती है ? इसके विपरीत एक गाय अपने जीवन में कितना दूध देती है ? उसके कितने बछड़े–बछड़ियाँ होती हैं, बैलों से खेती में कितना अन्न उत्पन्न होता है, गाय के गोबर–मूत्र से भूमि कितनी उर्वरा होती है ? ऐसा आर्थिक विश्लेषण किसी ने उनसे पूर्व नहीं किया। जहाँ तक प्राणियों के लिये ऋषि के मन में दया भाव का प्रश्न है, वह दया तो केवल दयानन्द के ही हृदय में हो सकती है। ऋषि लिखते हैं–भगवान! क्या पशुओं की चीत्कार तुम्हें सुनाई नहीं देती है ? हे ईश्वर! क्या तुम्हारे न्याय के द्वार इन मूक पशुओं के लिये बन्द हो गये हैं ?

अनाथ एवं अवैध संतानों के अधिकारों की रक्षा : ऋषि ने समाज में जो बालक–बालिकायें, माता–पिता और संरक्षक–विहीन, अभाव–पीड़ित, प्रताड़ित और उपेक्षित थे, उनके अधिकारों के लिये सरकार से लड़ाई लड़ी।

जो बालक अविवाहित माता–पिता की सन्तान हैं, समाज उन्हें हीन समझता है, उन बालकों को अवैध कहकर, उनकी उपेक्षा करता है। ऋषि कहते हैं–माता–पिता का यह कार्य समाज की दृष्टि में अवैध कहा जाता हो, परन्तु इसमें संतान किसी भी प्रकार से दोषी नहीं है। सभी बालक ईश्वर की व्यवस्था से तथा प्रकृति के नियमानुसार ही उत्पन्न होते हैं, अतः वे समाज में समानता के अधिकारी हैं। उनकी उपेक्षा करना, उनके साथ अन्याय है।

कोई शिष्य, उत्तराधिकारी नहीं बनाया : सभी मतसम्प्रदाय परम्परा के व्यक्ति अपने उत्तराधिकारी नियुक्त करते हैं। ऋषि के समय उनके भक्त, शिष्य, अनुयायी थे, परन्तु किसी भी व्यक्ति को उन्होंने अपना उत्तराधिकारी नहीं बनाया। उन्होंने अपनी वस्तुओं और धन का उत्तराधिकारी परोपकारिणी सभा को बनाया। अपने धन को सौंपते हुए, वेद के प्रचार–प्रसार और दीन–अनाथों की रक्षा का उत्तरदायित्व दिया। विचारों और सिद्धांतों के प्रचार के लिये आर्य समाज के दस नियम और उनका पालन करने के लिये आर्य समाज का संगठन बनाया।

धार्मिक क्षेत्र में प्रजातन्त्र का प्रयोग : धर्म और आस्था के क्षेत्र में उत्तराधिकार और गुरू–परम्परा का स्थान मुख्य रहा है। शासन–परम्परा में ऋषि के समय विदेशों में प्रजातन्त्र स्थापित हो रहा था। भारत में राजतन्त्र ही चल रहा था। अंग्रेज लोग राजाओं के माध्यम से ही भारतीय प्रजा पर शासन कर रहे थे। जहाँ राजा नहीं थे, वहाँ अंग्रेज अधिकारी ही शासक थे। शासन में जनता की कोई भागीदारी नहीं थी। ऋषि का कार्य क्षेत्र धार्मिक और सामाजिक था। इस क्षेत्र में प्रजातन्त्र की बात नहीं की जाती थी, गुरू–महन्त जिसको उचित समझे, उसे अपना उत्तराधिकारी चुन सकते थे। सभी लोग गुरू के आदेश को शिरोधार्य करके उसका अनुसरण करते थे, आज भी ऐसा हो रहा है।

धार्मिक क्षेत्र आस्था और श्रद्धा का क्षेत्र है। व्यक्ति के मन में जिसके प्रति आस्था हो, वह उसको गुरू मान लेता है, उसका अनुयायी हो जाता है, परन्तु स्वामी जी ने इस क्षेत्र में तीन बातों का समावेश किया–प्रथम बात, किसी के प्रति श्रद्धा करने से पूर्व उसकी परीक्षा करना, किसी भी विचार को परीक्षा करने के उपरान्त ही स्वीकार करना। आज तक किसी गुरू ने शिष्य को यह अधिकार नहीं दिया कि वह गुरू की बातों की परीक्षा करे, उसके सत्यासत्य को स्वयं जांचे। यही कारण है कि स्वामी जी के शिष्यों में गुरुडम को स्थान नहीं है।

ऋषि की दूसरी विलक्षणता–परीक्षा करने की योग्यता मनुष्य में तब आती है, जब वह ज्ञानवान होता है और मनुष्य को ज्ञानवान गरू ही बनाता है। ऋषि दयानन्द अपने शिष्यों, भक्तों और अनुयायी लोगों को पहले ज्ञानवान बनाते हैं, फिर उस ज्ञान से अपने विचार की परीक्षा करने को कहते हैं।

सामान्य गुरू लोग अपने भक्तों और शिष्यों को ज्ञान का ही अधिकार नहीं देते, परीक्षा करने के अधिकार का तो प्रश्न ही नहीं उठता। ऋषि मनुष्य मात्र को ज्ञान का अधिकारी मानते हैं, अतः ज्ञान का उपयोग परीक्षा में होना स्वाभाविक है। तीसरी बात ऋषि ने धार्मिक क्षेत्र में की, वह है प्रजातान्त्रिक प्रणाली का उपयोग। धार्मिक लोग सदा समर्पण को ही मान्यता देते हैं, वहाँ गुरू परम्परा ही चलती है, परन्तु ऋषि ने धार्मिक संगठनों की स्थापना कर उनमें प्रजातन्त्रात्मक पद्धति का उपयोग किया। यह विवेचना का विषय हो सकता है कि यह पद्धति

सफल है या असफल है। मनुष्य की बनाई कोई भी वस्तु शत–प्रतिशत सफल नहीं हो सकती, अतएव समाज में नियम, मान्यता, व्यवस्थाएँ सदा परिवर्तित होती रहती हैं। गुरुडम की समाप्ति प्रजातन्त्र के बिना सम्भव नहीं थी, अतः ऋषि ने इसे महत्व दिया है। प्रजातन्त्रात्मक पद्धति की विशेषता है कि इसमें योग्यता का सम्मान होता है। इसमें हम देखते हैं कि योग्यता के कारण एक व्यक्ति जो सबसे पीछे था, वह इस पद्धति में एक दिन सबसे अग्रिम पंक्ति में दिखाई देता है।

मूर्ति–पूजा : मूर्ति पूजा एक ऐसा प्रश्न है, जिसके निरर्थक होने में बुद्धिमान सहमत हैं, परन्तु व्यवहार में स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं। ऋषि ने मूर्ति–पूजा को पाप और अपराध कहा, इसके लिये पूरे देश में शास्त्रार्थ किये। काशी के विद्वानों को ललकारा। ऋषि मूर्ति–पूजा के विरोध के प्रतीक बन गये। समाज में समाज–सुधारकों की बड़ी परम्परा है, प्रायः सभी ने उसको यथावत् स्वीकार करके ही अपनी बात रखी, जिससे उनके अनुयायी बनने में जनता को किसी प्रकार की कठिनाई नहीं आई। लोगों ने अपने भगवानों की पंक्ति में सुधारकों को भी सम्मानित स्थान दे दिया। आश्चर्य है, आचार्य शंकर जैसे विद्वान् जिनके लिये अखण्ड एकरस ब्रह्म जिसके सामने जीना–मरना, संसार का होना, न होना कोई अर्थ नहीं रखता, वे शिव की मूर्ति को भगवान मानकर उसकी पूजा–अर्चना करना ही अपना धर्म मानते हैं। तस्मै नकाराय नमः शिवाय जैसा स्तोत्र रचते हैं। मूर्ति–पूजा सबसे बड़ा पाखण्ड है, जिसमें एक पत्थर भगवान का विकल्प तो बन सकता है परन्तु एक नौकर या एक गाय का विकल्प नहीं बन सकता। दुकान पर दुकानदार पत्थर के नौकर को बैठाकर अपना काम नहीं चला सकता और न ही पत्थर की गाय से दूध प्राप्त कर सकता है। प्रश्न यह है कि पत्थर का भगवान संसार की सारी वस्तुयें दे सकता है तो पत्थर की गाय दूध क्यों नहीं दे सकती या मनुष्य पत्थर के नौकर को दुकान पर छोड़कर बाहर क्यों नहीं जा सकता ?

ऋषि दयानन्द ने मूर्ति–पूजा को धूर्तता और मूर्खता का सम्मेलन बताया है। मन्दिर को चलाने वाल चालाक दुकानदार होता है और पूजा कर चढ़ावा चढ़ाने वाला भक्त भय, लोभ में फंसा अज्ञानी। यही मूर्ति–पूजा का रहस्य है, जिसे सभी जानते हैं, परन्तु इसको घोषणापूर्वक कहना ऋषि का ही कार्य है।

राष्ट्रीयता : जिन्हें हम समाज–सुधारक या धार्मिक–नेता कहते हैं, वे राजनीति और शासन के सम्बन्ध में चुप रहना ही अच्छा समझते हैं। उनकी उदासीन या सर्वमैत्री भाव वाली दृष्टि कोउ नृप होऊ हमें का हानि वाली रहती है, परन्तु ऋषि ने अपने ग्रंथ में राजनीति पर एक अध्याय लिखा और अपने लेखन, भाषण में उनके उचित–अनुचित पर टिप्पणी भी की। ऋषि दयानन्द अपने ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं–विदेशी राज्य माता–पिता के समान भी सुखकारी हो, तो भी अपने राज्य से अच्छा नहीं हो सकता। आपने अंग्रेजी शासन की चर्चा करते हुए कहा कि अंग्रेज अपने कार्यालय में देसी जूते को सम्मान नहीं देता, वह अंग्रेजी जूता पहनकर अपने कार्यालय में आने की आज्ञा देता है। यह लिखकर उन्होंने स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेम प्रकाशित किया है।

ऋषि अंग्रेज अधिकारी द्वारा शासन में किसी प्रकार की असुविधा न होने की बात पर उसके लम्बे शासन की प्रार्थना का प्रस्ताव ठुकरा कर प्रतिदिन भगवान से देश के स्वतन्त्र होने की प्रार्थना करने की बात करते हैं। यही कारण है कि भारत के किसी मन्दिर में 'भारत माता की जय' नहीं बोली जाती, परन्तु आर्य समाज मन्दिरों में प्रत्येक सत्संग के बाद भारत माता की जय बोलना आर्य समाज की धार्मिक परिपाटी का अङ्ग है। यह बात सभी समाज सुधारकों से ऋषि को अलग करती है।

वेद के पढ़ने का अधिकार : भारत को आज भी वेद के बिना देखना सम्भव नहीं, भारत के सभी सम्प्रदाय वेद से सम्बन्ध रखते हैं, उनका अस्तित्व वेद से है। जो आस्तिक सम्प्रदाय हैं, वे वेद में आस्था रखते हैं, वेद को पवित्र पुस्तक और धर्म ग्रन्थ मानते हैं, दूसरे सम्प्रदाय वेद को धर्मग्रन्थ नहीं मानते, स्वयं को वेद–विरोधी स्वीकार करते हैं। सबसे विचारणीय बात है कि वेद को मानने वाले अपने को आस्तिक कहते हैं, वेद न मानने वाले को लोग नास्तिक कहते हैं। सामान्य रूप से ईश्वर को मानने वाले आस्तिक कहलाते हैं। ईश्वर की सत्ता को जो लोग स्वीकार नहीं करते, उनको नास्तिक कहा गया है। कुछ लोग वेद को स्वीकार नहीं करते, परन्तु किसी–न–किसी रूप में ईश्वर की सत्ता मानते हैं, अतः ऐसे लोगों को भी नास्तिकों की श्रेणी में रखा गया। इस देश के आस्तिक भी नास्तिक भी, वेद से जुड़े होने पर भी दोनों का वेद से कोई सम्बन्ध शेष नहीं है। वेद–समर्थक भी वेद नहीं पढ़ते, वेद–विरोधी भी वेद को बिना पढ़े समर्थकों की बातें सुनकर ही वेद का विरोध करते हैं।

ऋषि दयानन्द इन दोनों से विलक्षण हैं। उनके वेद सम्बन्धी विचारों का विरोध वेद के समर्थक भी करते है और वेद विरोधी भी। दोनों ऋषि दयानन्द के विरोधी हैं और इसी कारण ऋषि दयानन्द दोनों का ही विरोध करते हैं।

ऋषि दयानन्द की इस विलक्षणता का कारण उनकी वेद–ज्ञान की कसौटी है। लोग कहते हैं–ऋषि दयानन्द ने वेद कब पढ़े हैं ? गुरू विरजानन्द के पास तो वे केवल ढाई वर्ष तक रहे, फिर वेद कब पढ़े ? इसका उत्तर है–दण्डी विरजानन्द के पास ऋषि दयानन्द ने वेदार्थ की कुंजी प्राप्त की, वह कुंजी है–आर्ष और अनार्ष की। हमारे समाज में संस्कृत में लिखी बात को प्रमाण माना जाता है। आर्ष–अनार्ष में विभाजन करने से मनुष्यकृत सारा साहित्य अप्रमाण कोटि में आ जाता है। अब जो

शेष साहित्य बचा है, उसके शुद्धिकरण की कुंजी शास्त्रों ने दी है। ऋषि दयानन्द ने उसको आधार बनाकर सारे वैदिक साहित्य को स्वतः प्रमाण और परतः प्रमाण में बांट कर जो कुछ वेद के मन्तव्यों से विरुद्ध लिखा गया है, उसे निरस्त कर अप्रामाणिक घोषित कर दिया। जो कुछ इनमें वेद विरूद्ध लिखा गया, वह दो प्रकार का है, एक–स्वतन्त्र ऋषियों के नाम पर लिखे गये ग्रंथ तथा दूसरे–ऋषि ग्रंथों में की गई मिलावट, जिसे शास्त्रीय भाषा में प्रक्षेप कहते हैं। ऋषि ने इस प्रक्षेप को परतः प्रमाण मानकर जो कुछ वेदानुकूल नहीं है, उसे त्याज्य घोषित कर दिया। इस प्रकार ऋषि को वेद तक पहुँचना सरल हो गया।

अब बात शेष रही, वेद किसे माना जाय ? पौराणिक लोग सब कुछ को वेद का नाम देकर सारा पाखण्ड ही वैदिक बना डालते हैं। ऋषि ने मूल वेद संहिता और शाखा ब्राह्मण भाग को वेद से भिन्न कर दिया। आज हमारे पास दो यजुर्वेद हैं, इनमें किसे वेद स्वीकार किया जाय, इस पर ऋषि दयानन्द की युक्ति बड़ी बुद्धि ग्राह्य लगती है। वे कहते हैं–शुक्ल और कृष्ण शब्द ही इसके निर्णायक हैं। शुक्ल प्रकाश होने से श्रेष्ठता को द्योतक है, कृष्ण प्रकाश रहित होने से कम होने का। दूसरा तर्क है, जिसमें मूल है, वह शुक्ल तथा जिसमें व्याख्या है, उसे कृष्ण कहा गया है।

ऋषि समस्त वेद को वेदत्व के नाते एक स्वीकार करते हैं तथा शेष वैदिक साहित्य को वेदानुकूल होने पर प्रमाण स्वीकार करते हैं। जहाँ तक हमारे पौराणिक लोग हैं, वे वेद को तो ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं, परन्तु वेद में सब कुछ उचित–अनुचित है, यह भी उन्हें स्वीकार्य है। ऋषि दयानन्द जो ईश्वर और प्रकृति के नियमों के अनुकूल है, उसे ही वेद मानते हैं। जो ईश्वरीय ज्ञान प्रकृति नियमों के विरूद्ध है, उसे वेद प्रोक्त नहीं माना जा सकता।

वेद के अर्थ विचार की जो कसौटी ऋषि दयानन्द ने प्रस्तुत की है, वह भी शास्त्रानुकूल है। समस्त वेद एक होने से तथा वेद एक बुद्धिपूर्ण रचना होने से वेद में परस्पर विरोधी बातें नहीं हो सकती तथा वेद के शब्दों का अर्थ आज की लौकिक संस्कृत के शब्द कोष से निर्धारित नहीं किया जा सकता। शब्द का अर्थ पूरे मन्त्र में घटित होना चाहिए तथा मन्त्र का अर्थ भी बिना प्रसंग के नहीं किया जा सकता। ऐसी परिस्थिति में हमारे पास वेदार्थ करने का जो उपाय शेष रहता है वह बहुत सीमित है। कोष के नाम पर हमारे पास निघण्टु निरुक्त है। उसके अतिरिक्त वैदिक साहित्य में आये शब्दों के निर्वचन हमारा मार्गदर्शन करते हैं। हमारे पास वेदार्थ करने का एक और उपाय है–वेदार्थ में यौगिक प्रक्रिया का प्रयोग करना। लोक में प्रायः रूढ़ि, योग–रूढ़ शब्दों से काम चलाया जाता है, परन्तु रूढ़ि शब्दों से वेदार्थ करना, वेद के साथ अन्याय है, अतः यास्कादि ऋषि वेदार्थ के लिये यौगिक प्रक्रिया को अनिवार्य मानते हैं।

ऋषि दयानन्द इसी आधार पर वेदार्थ को इस प्रक्रिया के अनुसार प्रस्तुत करने में समर्थ हो सके।

ऋषि दयानन्द की वेद के सम्बन्ध में एक और विलक्षणता है। वेद के भक्त वेद को धर्मग्रन्थ भी मानते हैं, परन्तु वेद को धर्मग्रन्थ स्वीकार करने वालों को उसे पढ़ना तो दूर, उसके सुनने तक का अधिकार देने को तैयार नहीं। इसके विपरीत वेद पढ़ने–सुनने पर दण्डित करने का विधान करते हैं। इस विषय में ये लोग कुरान एवं मोहम्मद साहब से भी आगे पहुँच गये। मनुष्य के धार्मिक होने के लिये धर्मग्रन्थ होता है, धर्मग्रन्थ को जाने बिना कोई भी धर्माधर्म को कैसे जान सकता है ? यह ऐसा प्रयास है, जैसे कोई बालक अपने माता–पिता से बात न कर सके। उसके शब्द न सुने और उनकी बात माने। ऋषि दयानंद वेद मन्त्र से ही इस धारणा का खण्डन कर देते हैं। वे कहते हैं–वेद ईश्वरीय ज्ञान है, संसार ईश्वर का है। प्रकृति के सभी पदार्थों पर सबका समान अधिकार–जल, वायु, पृथ्वी, आकाश सभी कुछ पर। बिल्कुल वैसे ही, जैसे संतानों का अपने पिता की सम्पत्ति पर अधिकार होता है, अतः प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वेद रूपी इस सम्पत्ति को अपनी सन्तान, परिजन, सेवकों को प्रदान करे। ऋषि इसके लिए यजुर्वेद का प्रमाण देते हैं :–

यथेमां वाचं कल्याणी मा वदानि जनेभ्यः
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च
प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः
समृद्ध्यतामुपमादो नमतु।

नींव के पत्थर

लाल बहादुर शास्त्री जब लोक सेवा मंडल के अध्यक्ष बने, वे नहीं चाहते थे कि उनका नाम समाचार–पत्रों में छपे और लोग उनकी प्रंशसा और स्वागत करें।

एक दिन शास्त्री जी के पास कुछ मित्रों ने उनसे पूछा–'शास्त्री जी, आपको समाचार–पत्रों में नाम छपवाने से इतना परहेज क्यों है ?'

शास्त्री जी कुछ देर सोचकर बोले–''लाला लाजपत राय ने लोक सेवा मण्डल के कार्य की दीक्षा देते हुए कहा था–'लाल बहादुर, ताजमहल में दो प्रकार के पत्थर लगे हैं। एक बढ़िया संगमरमर के पत्थर हैं, जिनको सारी दुनिया देखती है और उनकी प्रशंसा करती है। दूसरे वे पत्थर हैं जो ताजमहल की नींव हैं, जिनके जीवन में केवल अंधेरा ही अंधेरा है। किन्तु ताजमहल को उन्होंने ही खड़ा रखा है।' लाला जी के वे शब्द मुझे हर समय याद रहते हैं। मैं नींव का पत्थर ही बना रहना चाहता हूँ।

सौजन्य : मातृ वन्दना

कन्या भ्रूण हत्या एक ऐसा पाप है जिसका कोई प्रायश्चित नहीं

♦कामता प्रसाद आर्य, बिहार

समाज में स्त्री–पुरुष राष्ट्र का एक अंग है विकास का एक महत्त्वपूर्ण सूचक है। नर तथा नारी किसी एक की कमी होने पर सृष्टि का कार्य नहीं चल सकता। महामहिम पूर्व राष्ट्रपति श्री अब्दुल कलाम ने अपनी वेदना व्यक्त करते हुए कहा है–''समाज एक पक्षी है और नर तथा मादा इस पक्षी के दो पंख है। यह पक्षी उड़ नहीं सकेगा यदि उसका एक पंख कतर दिया जाता है।'' आज हमारे देश में यह जघन्य अपराध हो रहा है। प्रसवपूर्व निदान तकनीकि चिकित्सा तंत्र की महत्वपूर्ण खोज है, किन्तु यह खोज लिंग जाँच का एक अपवित्र साधन बन गई है। यही कारण है कि भारतीय संसद को इस दुरुपयोग पर रोक लगाने हेतु प्रसवपूर्व निदान तकनीकि (विनियमन और दुरुपयोग निवारण) अधिनियम १९९४ पारित करना पड़ा। यह अधिनियम सम्पूर्ण देश में १ जनवरी १९९६ से निरन्तर लागू है। भारत सरकार ने उक्त अधिनियम में आवश्यक संशोधन करके दिनांक ४ फरवरी २००३ से गर्भधारण से पूर्व और प्रसव पूर्व निदान तकनीक (लिंग चयन प्रतिषेध) अधिनियम १९९४ रखा।

गर्भधारण पूर्व और प्रसवपूर्व निदान तकनीकि (लिंग चयन प्रतिषेध) अधिनियम १९९४ के अन्तर्गत गर्भ धारणपूर्व या बाद लिंग चयन और जन्म से पहले कन्या भ्रूण हत्या के लिए लिंग परीक्षण करना, करवाना, इसके लिए सहयोग देना व विज्ञापन करवाना कानूनी अपराध है, जिसमें उसे ५ वर्ष तक जेल व १० हजार से १ लाख रुपये तक जुर्माना हो सकता है।

सरकार द्वारा कानून बना दिया गया। क्योंकि सरकार कानून बनाने तक ही सीमित है। घोर अपराध हो रहा है, फिर भी सरकार के खुफिया तंत्र निष्क्रिय एवं अनजान हैं।

मानवता के नाते सोचें कि भ्रूण हत्या करना –करवाना मनुष्यवृत्ति है या निशाचरी प्रवृत्ति अजन्मा भ्रूण जो अभी विकसित भी नहीं हो पाया हो उसने क्या अपराध किया है ? जिसे जन्म से पहले माँ के गर्भ में मार दिया जाता है। अतः मानव समाज से निवेदन है कि अपने निजी स्वार्थ से हटकर सोचें कि हम क्या कर रहे हैं, इस कर्म से राष्ट्र का भविष्य क्या होगा ?

सिर्फ कानून बनाना सर्वोपरि नहीं है, कानून का पालन करना सर्वोपरि है। नैतिक चरित्रता के अभाव में दुष्कर्म हो रहा है, प्रमुख रूप से तीन जिम्मेवार हैं सृष्टि सन्तुलन को बरबाद करने वाले, एक गर्भवती का परिवार दूसरा डाक्टर, तीसरा कानून का रक्षक प्रशासन सरकार जब तक यह तीनों मानव धर्म नहीं निभाएंगे तब तक यह शर्मनाक दुष्कर्म होता रहेगा, सृष्टि का सन्तुलन बिगड़ता ही रहेगा। यदि सच में मानव है तो सत्य को अपनाने में, असत्य को छोड़ने में ही मानव धर्म है।

असतो मा सद्गमय,
तमसो मा ज्योतिर्गमय

मनुष्य उसी को कहना कि मननशील हो कर स्वात्मत् अन्यों के सुःख–दुःख और हानि–लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं कि चाहे वे महाअनाथ, निर्बल और गुणरहित क्यों न हों–उन की रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे सनाथ महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उस का नाश, अवनति और अप्रियाचर सदा किया करे अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उस को कितना ही दारूण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें परन्तु उस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक कभी न होवे।

–सत्यार्थ प्रकाश

आर्य वन्दना शुल्क : वार्षिक शुल्क : ₹100, द्विवार्षिक शुल्क : ₹ 160, त्रैवार्षिक शुल्क : ₹ 200
आप शुल्क हि. प्र. स्टेट को–आपरेटिव बैंक लिमिटेड, सुन्दरनगर शाखा (खाता संख्या : 32510115356 आर्य वन्दना) में भी जमा करवा सकते हैं।

Arya Vandana/Sml/L33/Sm/64/2000 Postal Registered No.: MANDI (HP)/21/2013-15
Valid upto 31-12-2018

सेवा में

बुक पोस्ट

आर्य प्रति
दिल्ली

साक्षात्कार

पण्डित श्री लेखराम जी हृदय में महाराज के दर्शनों की तीव्र लालसा उत्पन्न हो आई। वे कुछ काल के लिए अपने सारे कामकाज छोड़कर, पंजाब से अजमेर जा पहुंचे। ज्येष्ठ बदी ४ सं. १२३८ प्रातः काल श्री सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने, भक्ति–भाव के भार से नम्रीभूत होकर, श्री चरणों में विनीत नमस्ते निवेदन किया। उनके प्रेम–रस से रसीले, विमल लोचनों, मधुर मुखमण्डल को, शोभाशाली विशाल ललाट को और पतित पावनी परम् पवित्र आकृति को अवलोकन कर, मोहियाल वंश के सुवीर सुपूत को अतिशय प्रसन्नता उपलब्ध हुई। वे मार्ग की सारी थकान तत्काल भूल गये। वे अतृप्त लोचनों से, अति तृष्णा के साथ, स्वामीजी के सुन्दर स्वरूप को देखने लगे।

पण्डित जी ने बद्धांजलि होकर पूछा कि भगवन्! आकाश और ब्रह्म दोनों पदार्थ व्यापक हैं। दोनों एक स्थान पर एकत्र क्योंकर रह सकेत हैं ?

महाराज ने एक पास पड़ा पत्थर उठाकर पूछा कि इसमें अग्नि व्यापक है वा नहीं ?उन्होंने कहा कि हाँ अवश्यमेव है फिर उन्होंने उसी पाषाणखण्ड में वायु, जल, मृत्तिका, आकाश और परमात्मा की व्यापकता पूछी। पण्डित जी ने सबकी व्यापकता स्वीकार कर ली। तब स्वामी जी ने कहा, "भद्र! आपने समझ लिया कि एक पत्थर में सब पदार्थ व्याप्त हो रहे हैं। इस व्यापकता का सरल सिद्धान्त यह है कि जो पदार्थ जिससे सूक्ष्म होता है वह उसमें व्याप्त हो सकता है। परमात्मादेव परम सूक्ष्म हैं। इसलिए वे सब पदार्थों में परिपूर्ण हो रहे हैं।"

भगवान् ने ताड़ लिया कि भक्त की हृदय–भूमि उपजाऊ है। उसमें धर्मकल्पतरू का बीज बोने की भावना से उन्होंने कहा कि आप यथेष्ठ प्रश्न पूछकर अपने संशय निवारण कर लिजिए। उस समय पण्डित जी ने दस प्रश्न पूछे। उनमें, पीछे से उन्हें ये थोड़े से स्मरण रह गये।

प्रश्न– भगवन्! जीव और ब्रह्म के भिन्न–भिन्न होने में कोई प्रमाण दीजिये।

उत्तर– यजुर्वेद का सारा चालीसवां अध्याय जीव और ब्रह्म का भेद वर्णन करता है।

प्रश्न– मुसलमान और ईसाई आदि मतों के मनुष्यों को क्या शुद्ध कर लेना चाहिए ?

उत्तर– हां, अवश्यमेव शुद्ध कर लेना चाहिए।

प्रश्न– बिजली क्या वस्तु है और किस प्रकार उत्पन्न होती है ?

उत्तर– बिजली सर्वत्र है। रगड़ से अभिव्यक्त हो जाती है। बादलों की विद्युत् भी वायु और बादलों के संघर्षण से प्रकट होती है।

महाराज जी ने पण्डित जी से कहा, " जब तक आपकी आयु पच्चीस वर्ष की न हो तब तक विवाह कदापि न कराइएगा।" धर्म्म–वीर जब अपने परमधीर और कर्मवीर गुरू से विदा होने लगे तो उनसे बोले– "गुरूदेव! कोई अपना स्मारक चिन्ह प्रदान कीजिए।" महाराज ने निज अनन्य भक्त को, अतिवत्सल भाव से, एक प्रति अष्टाध्यायी की प्रदान की। तत्पश्चात् होन हार आर्यपथिक उनके अरूणवर्ण चरण छूकर वहां से अपने प्रान्त को लौट गए।